॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

माण्डूक्योपनिषद्

शान्तिपाठ

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः॥
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥
ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

[इसका अर्थ प्रश्नोपनिषद्में दिया जा चुका है।]

ओमित्येतदक्षरमिदꣳ सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव। यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव॥ १॥

ॐ=ॐ; **इति**=इस प्रकारका; **एतत्**=यह; **अक्षरम्**=अक्षर (अविनाशी परमात्मा) है; **इदम्**=यह; **सर्वम्**=सम्पूर्ण जगत्; **तस्य**=उसका ही; **उपव्याख्यानम्**=उपव्याख्यान अर्थात् उसीकी निकटतम महिमाका लक्ष्य करानेवाला है; **भूतम्**=भूत (जो हो चुका); **भवत्**=वर्तमान (और); **भविष्यत्**=भविष्यत् (जो होनेवाला है); **इति**=यह; **सर्वम्**=सब-का-सब जगत्; **ओंकारः**=ओंकार; **एव**=ही है; **च**=तथा; **यत्**=जो; **त्रिकालातीतम्**=ऊपर कहे हुए तीनों कालोंसे अतीत; **अन्यत्**=दूसरा (कोई तत्त्व है); **तत्**=वह; **अपि**=भी; **ओंकारः**=ओंकार; **एव**=ही है॥ १॥

व्याख्या—इस उपनिषद्में परब्रह्म परमात्माके समग्र रूपका तत्त्व समझानेके लिये उनके चार पादोंकी कल्पना की गयी है। नाम और नामीकी एकताका प्रतिपादन करनेके लिये प्रणवकी अ, उ और म्—इन तीन मात्राओंके साथ और मात्रारहित उसके अव्यक्तरूपके साथ परब्रह्म परमात्माके एक-एक पादकी समता दिखलायी गयी है। इस प्रकार इस मन्त्रमें परब्रह्म परमात्माका नाम जो ओंकार है, उसको समग्र पुरुषोत्तमसे अभिन्न मानकर यह कहा गया है कि 'ओम्' यह अक्षर ही पूर्णब्रह्म अविनाशी परमात्मा है। यह प्रत्यक्ष दिखायी देनेवाला जड-चेतनका समुदायरूप सम्पूर्ण जगत् उन्हींका उपव्याख्यानी अर्थात् उन्हींकी निकटतम महिमाका निदर्शक है। जो स्थूल और सूक्ष्म जगत् पहले उत्पन्न होकर उनमें विलीन हो चुका है और जो इस समय वर्तमान है तथा जो उनसे उत्पन्न होनेवाला है—वह सब-का-सब ओंकार ही है अर्थात् परब्रह्म परमात्मा ही है तथा जो तीनों कालोंसे अतीत इससे भिन्न है, वह भी ओंकार ही है। अर्थात् कारण, सूक्ष्म और स्थूल—इन तीन भेदोंवाला जगत् और इसको धारण करनेवाले परब्रह्मके जिस अंशकी इसके आत्मारूपमें और आधाररूपमें अभिव्यक्ति होती है, उतना ही उन परमात्माका स्वरूप नहीं है; इससे अलग भी वे हैं। अतः उनका अभिव्यक्त अंश और उससे अतीत भी जो कुछ है, वह सब मिलकर ही परब्रह्म परमात्माका समग्र रूप है।

अभिप्राय यह है कि जो कोई परब्रह्मको केवल साकार मानते हैं या निराकार मानते हैं या सर्वथा निर्विशेष मानते हैं—उन्हें सर्वज्ञता, सर्वाधारता, सर्वकारणता, सर्वेश्वरता, आनन्द, विज्ञान आदि कल्याणमय गुणोंसे सम्पन्न नहीं मानते, वे सब उन परब्रह्मके एक-एक अंशको ही परमात्मा मानते हैं। पूर्णब्रह्म परमात्मा साकार भी हैं, निराकार भी हैं तथा साकार-निराकार दोनोंसे रहित भी हैं। सम्पूर्ण जगत् उन्हींका स्वरूप है और वे इससे सर्वथा अलग भी हैं। वे सर्वगुणोंसे रहित, निर्विशेष भी हैं और सर्वगुणसम्पन्न भी हैं—यह मानना ही उन्हें सर्वाङ्गपूर्ण मानना है॥ १॥

सम्बन्ध—*सब कुछ ओंकार कैसे है? यह कहते हैं—*

सर्वꣳ ह्येतद् ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म सोऽयमात्मा चतुष्पात्॥ २॥

हि=क्योंकि; **एतत्**=यह; **सर्वम्**=सब-का-सब; **ब्रह्म**=ब्रह्म है; **अयम्**=यह; **आत्मा**=परमात्मा (जो इस दृश्य-जगत्में परिपूर्ण है); **ब्रह्म**=ब्रह्म है; **सः**=वह; **अयम्**=यह; **आत्मा**=परमात्मा; **चतुष्पात्**=चार चरणोंवाला है॥ २॥

व्याख्या—यह सम्पूर्ण जगत् ब्रह्मसे भिन्न कुछ नहीं है, सब-का-सब ब्रह्म है और ओंकार उनका नाम होनेके कारण नामीसे अभिन्न है, इसलिये सब कुछ ओंकार है—यह बात पहले मन्त्रमें कही गयी है; क्योंकि यह सम्पूर्ण जगत् उन परब्रह्म परमात्माका शरीर है और वे इसके अन्तर्यामी आत्मा हैं (अन्तर्यामिब्राह्मण बृ०उ०), इसलिये ये सर्वात्मा ही ब्रह्म हैं। वे सर्वात्मा परब्रह्म आगे बताये हुए प्रकारसे चार पादवाले हैं। वास्तवमें उन अखण्ड निरवयव परब्रह्म परमात्माको चार पादोंवाला कहना नहीं बनता; तथापि उनके समग्ररूपकी व्याख्या करनेके लिये उनकी अभिव्यक्तिके प्रकार-भेदोंको लेकर श्रुतियोंमें जगह-जगह उनके चार पादोंकी कल्पना की गयी है। उसी दृष्टिसे यहाँ भी श्रुति कहती है॥ २॥

जागरितस्थानो बहिष्प्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः स्थूलभुग्वैश्वानरः प्रथमः पादः॥ ३॥

जागरितस्थानः=जाग्रत्-अवस्थाकी भाँति यह सम्पूर्ण स्थूल जगत् जिसका स्थान अर्थात् शरीर है; **बहिष्प्रज्ञः**=जिसका ज्ञान इस बाह्य जगत्में फैला हुआ है; **सप्ताङ्गः**=भूः, भुवः आदि सात लोक ही जिसके सात अङ्ग हैं; **एकोनविंशतिमुखः**=पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच प्राण और चार अन्तःकरण—ये उन्नीस विषयोंको ग्रहण करनेवाले समष्टि 'करण' ही जिसके उन्नीस मुख हैं; **स्थूलभुक्**=जो इस स्थूल जगत्का भोक्ता—इसको अनुभव करनेवाला तथा जाननेवाला है, वह; **वैश्वानरः**=वैश्वानर (विश्वको धारण करनेवाला) परमात्मा; **प्रथमः**=पहला; **पादः**=पाद है॥ ३॥

व्याख्या—परब्रह्म परमात्माके वे चार पाद कैसे और किस प्रकार हैं—यह बात समझानेके लिये जीवात्मा तथा उसके स्थूल, सूक्ष्म और कारण—इन तीनों शरीरोंके उदाहरण देते हुए उन परमात्माके तीनों पादोंका वर्णन क्रमशः किया गया है। उनमेंसे पहले पादका इस मन्त्रमें वर्णन है। भाव यह है कि जिस प्रकार जाग्रत्-अवस्थामें इस स्थूल शरीरका अभिमानी जीवात्मा सिरसे लेकर पैरतक सात अङ्गोंसे युक्त होकर स्थूल विषयोंके उपभोगके द्वाररूप दस इन्द्रिय, पाँच प्राण और चार अन्तःकरण—इस प्रकार इन उन्नीस मुखोंसे विषयोंका उपभोग करता है और उसका विज्ञान बाह्य जगत्में फैला रहता है, उसी प्रकार सात लोकरूप सात अङ्गों और समष्टि इन्द्रिय, प्राण तथा अन्तःकरण—इस प्रकार उन्नीस मुखोंसे युक्त इस स्थूल जगत्रूप शरीरका आत्मा—जो सम्पूर्ण देवता, पितर, मनुष्य आदि समस्त प्राणियोंका प्रेरक और स्वामी होनेके कारण इस स्थूल जगत्का ज्ञाता और भोक्ता है (गीता ५। २९; ९। २४), जिसकी अभिव्यक्ति इस बाह्य स्थूल जगत्में हो रही है—वह सर्वरूप वैश्वानर उन पूर्णब्रह्म परमात्माका पहला पाद है।

जो विश्व अर्थात् बहुत भी हो और नर भी हो, उसे वैश्वानर कहते हैं—इस व्युत्पत्तिके अनुसार स्थूल जगत्रूप शरीरवाले सर्वरूप परमेश्वरको यहाँ वैश्वानर कहा गया है। ब्रह्मसूत्र, अध्याय १, पाद २, सूत्र २४ में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि आत्मा और ब्रह्म—इन दोनोंका वाचक जहाँ 'वैश्वानर' पद आये, वहाँ वह जीवात्माका या अग्निका नाम नहीं है। वह परब्रह्म परमेश्वरका ही वाचक है, यों समझना चाहिये। वैश्वानर-विद्यामें भी इसी प्रकार परमात्माको वैश्वानर बताया गया है (छा० उ० ५। ११। १—६)। अतः यहाँ '**जागरितस्थानः**' इस पदके बलपर जाग्रत्-अवस्थाके अभिमानी जीवात्माको ब्रह्मका पहला पाद या वैश्वानर मानना ठीक नहीं मालूम होता; क्योंकि तीन अवस्थाओंके दृष्टान्तसे ब्रह्मके तीन पादोंका वर्णन करनेके पश्चात् छठे मन्त्रमें यह स्पष्ट कर दिया गया है कि जिनको इन तीनों अवस्थाओंमें स्थित बताया गया है, वे सर्वेश्वर, सर्वज्ञ, अन्तर्यामी, सम्पूर्ण जगत्के कारण तथा समस्त प्राणियोंकी उत्पत्ति और प्रलयके स्थान हैं। ये लक्षण जीवात्मामें नहीं घट सकते। इसलिये भी यहाँ सर्वात्मा वैश्वानर परमेश्वरको ही परब्रह्मका एक पाद कहा गया है, यही मानना युक्तिसङ्गत मालूम होता है॥ ३॥

स्वप्नस्थानोऽन्तःप्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः प्रविविक्तभुक्तैजसो द्वितीयः पादः॥ ४॥

स्वप्नस्थानः=स्वप्नकी भाँति सूक्ष्म जगत् ही जिसका स्थान है; **अन्तःप्रज्ञः**=जिसका ज्ञान सूक्ष्म जगत्में व्याप्त है; **सप्ताङ्गः**=पूर्वोक्त सात अङ्गोंवाला (और); **एकोनविंशतिमुखः**=उन्नीस मुखोंवाला; **प्रविविक्तभुक्**=सूक्ष्म जगत्का भोक्ता; **तैजसः**=तैजस—प्रकाशका स्वामी सूत्रात्मा हिरण्यगर्भ; **द्वितीयः पादः**=उस पूर्णब्रह्म परमात्माका दूसरा पाद है॥ ४॥

व्याख्या—इस मन्त्रमें पूर्णब्रह्म परमात्माके दूसरे पादका वर्णन है। भाव यह है कि जिस प्रकार स्वप्न-अवस्थामें सूक्ष्मशरीरका अभिमानी जीवात्मा पहले बतलाये हुए सूक्ष्म सात अङ्गोंवाला और उन्नीस मुखोंवाला होकर सूक्ष्म विषयोंका उपभोग करता है और उसीमें उसका ज्ञान फैला रहता है, उसी प्रकार जो स्थूल अवस्थासे भिन्न सूक्ष्मरूपमें परिणत हुए सात लोकरूप सात अङ्ग तथा इन्द्रिय, प्राण और अन्तःकरणरूप उन्नीस मुखोंसे युक्त सूक्ष्म जगत्रूप शरीरमें स्थित, उसका आत्मा हिरण्यगर्भ है, वह समस्त जड-चेतनात्मक सूक्ष्म जगत्के समस्त तत्त्वोंका नियन्ता, ज्ञाता और सबको अपनेमें प्रविष्ट किये हुए है, इसलिये उसका भोक्ता और जाननेवाला कहा जाता है। वह तैजस अर्थात् सूक्ष्म प्रकाशमय हिरण्यगर्भ उन पूर्णब्रह्म परमात्माका दूसरा पाद है।

समस्त ज्योतियोंकी ज्योति, सबको प्रकाशित करनेवाले, परम प्रकाशमय हिरण्यगर्भरूप परमेश्वरका ही वर्णन यहाँ तैजस नामसे हुआ है। ब्रह्मसूत्रके '**ज्योतिश्चरणाभिधानात्**' (१।१।२४) इस सूत्रमें यह बात स्पष्ट की गयी है कि पुरुषके प्रकरणमें आया हुआ '**ज्योतिः**' वा '**तेजः**' शब्द ब्रह्मका वाचक ही समझना चाहिये। जहाँ ब्रह्मके पादोंका वर्णन हो, वहाँ तो दूसरा अर्थ—जीव या प्रकाश आदि मानना किसी तरह भी उचित नहीं है। उपनिषदोंमें बहुत जगह परमेश्वरका वर्णन '**ज्योतिः**' (**अथ यदतः परो दिवो ज्योतिर्दीप्यते**—छा० उ० ३।१३।७) और '**तेजस्**' (**येन सूर्यस्तपति तेजसेद्धः** तै० ब्रा० ३।१२।९।७)-के नामसे हुआ है। इसलिये यहाँ केवल '**स्वप्नस्थानः**' पदके बलपर स्वप्नावस्थाके अभिमानी जीवात्माको ब्रह्मका दूसरा पाद मान लेना उचित नहीं मालूम होता। इसमें तीसरे मन्त्रकी व्याख्यामें बताये हुए कारण तो हैं ही। उनके सिवा यह एक कारण और भी है कि स्वप्नावस्थामें जीवात्माका ज्ञान जाग्रत्-अवस्थाकी अपेक्षा कम हो जाता है; किंतु यहाँ जिसका वर्णन तैजसके नामसे किया गया है, उस दूसरे पादरूप हिरण्यगर्भका ज्ञान जाग्रत्की अपेक्षा अधिक विकसित होता है। इसीलिये इसको तैजस अर्थात् ज्ञानस्वरूप बतलाया है और दसवें मन्त्रमें ओंकारकी दूसरी मात्रा 'उ' के साथ इसकी एकता करते हुए इसको उत्कृष्ट (श्रेष्ठ) बताया है और इसके जाननेका फल ज्ञान-परम्पराकी वृद्धि और जाननेवालेकी संतानका ज्ञानी होना कहा है। स्वप्नाभिमानी जीवात्माके ज्ञानका ऐसा फल नहीं हो सकता, इसलिये भी तैजसका वाच्यार्थ सूक्ष्म जगत्के स्वामी हिरण्यगर्भको ही मानना युक्तिसंगत प्रतीत होता है॥ ४॥

यत्र सुप्तो न कञ्चन कामं कामयते न कञ्चन स्वप्नं पश्यति तत्सुषुप्तम्। सुषुप्तस्थान एकीभूतः प्रज्ञानघन एवानन्दमयो ह्यानन्दभुक्चेतोमुखः प्राज्ञस्तृतीयः पादः॥ ५॥

यत्र=जिस अवस्थामें; **सुप्तः**=सोया हुआ (मनुष्य); **कञ्चन**=किसी भी; **कामम् न कामयते**=भोगकी कामना नहीं करता; **कञ्चन**=कोई भी; **स्वप्नम्**=स्वप्न; **न**=नहीं; **पश्यति**=देखता; **तत्**=वह; **सुषुप्तम्**=सुषुप्ति-अवस्था है; **सुषुप्तस्थानः**=ऐसी सुषुप्ति अर्थात् जगत्की प्रलय-अवस्था अथवा कारण-अवस्था ही जिसका शरीर है; **एकीभूतः**=जो एकरूप हो रहा है; **प्रज्ञानघनः एव**=जो एकमात्र घनीभूत विज्ञानस्वरूप है; **आनन्दमयः हि**=जो एकमात्र आनन्दमय अर्थात् आनन्दस्वरूप ही है; **चेतोमुखः**=प्रकाश ही जिसका मुख है; **आनन्दभुक्**=जो एकमात्र आनन्दका ही भोक्ता है (वह); **प्राज्ञः**=प्राज्ञ; **तृतीयः पादः**=(ब्रह्मका) तीसरा पाद है॥ ५॥

व्याख्या—इस मन्त्रमें जाग्रत्की कारण और लय-अवस्थारूप सुषुप्तिके साथ प्रलयकालमें स्थित कारणरूपसे जगत्की समानता दिखानेके लिये पहले सुप्रसिद्ध सुषुप्ति-अवस्थाके लक्षण बतलाकर उसके

बाद पूर्ण ब्रह्म परमात्माके तीसरे पादका वर्णन किया गया है। भाव यह है कि जिस अवस्थामें सोया हुआ मनुष्य किसी प्रकारके किसी भी भोगकी न तो कामना करता है और न अनुभव ही करता है तथा किसी प्रकारका स्वप्न भी नहीं देखता, ऐसी अवस्थाको सुषुप्ति कहते हैं। इस सुषुप्ति-अवस्थाके सदृश जो प्रलयकालमें जगत्की कारण-अवस्था है, जिसमें नाना 'रूपों' का प्राकट्य नहीं हुआ है—ऐसी अव्याकृत प्रकृति ही जिसका शरीर है तथा जो एक अद्वितीयरूपमें स्थित है, उपनिषदोमें जिसका वर्णन कहीं सत्के नामसे (**'सदेव सोम्येदमग्र आसीत्'** छा० उ० ६।२।१) और कहीं आत्माके नामसे (**'एष सर्वेषु भूतेषु गूढोऽऽत्मा न प्रकाशते'**) आया है, जिसका एकमात्र चेतना (प्रकाश) ही मुख है और आनन्द ही भोजन है, वह विज्ञानघन, आनन्दमय प्राज्ञ ही उन पूर्ण ब्रह्मका तीसरा पाद है।

यहाँ प्राज्ञ नामसे भी सृष्टिके कारण सर्वज्ञ परमेश्वरका ही वर्णन है। ब्रह्मसूत्र प्रथम अध्यायके चौथे पादके अन्तर्गत पाँचवें सूत्रमें 'प्राज्ञ' शब्द ईश्वरके अर्थमें प्रयुक्त हुआ है, इसके सिवा और भी बहुत-से सूत्रोंमें ईश्वरके स्थानपर 'प्राज्ञ' शब्दका प्रयोग किया गया है। पूज्यपाद स्वामी शङ्कराचार्यने तो ब्रह्मसूत्रके भाष्यमें स्थान-स्थानपर परमेश्वरके बदले 'प्राज्ञ' शब्दका ही प्रयोग किया है। उपनिषदोंमें भी अनेक स्थलोंपर 'प्राज्ञ' शब्दका परमेश्वरके स्थानमें प्रयोग किया गया है (बृ० उ० ४।३।२१ और ४।३।३५)। प्रस्तुत मन्त्रमें साथ-ही-साथ ईश्वरसे भिन्न शरीराभिमानी जीवात्माका भी वर्णन है। यहाँ प्रकरण भी सुषुप्तिका है; इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि किसी भी दृष्टिसे 'प्राज्ञ' शब्द जीवात्माका वाचक नहीं है। ब्रह्मसूत्र (१।३।४२)-के भाष्यमें स्वयं शङ्कराचार्यजीने लिखा है कि 'सर्वज्ञतारूप प्रज्ञासे नित्य संयुक्त होनेके कारण 'प्राज्ञ' नाम परमेश्वरका ही है, अतः उपर्युक्त उपनिषद्-मन्त्रमें परमेश्वरका ही वर्णन है।' इसलिये यहाँ केवल '**सुषुप्तस्थानः**' पदके बलपर सुषुप्ति-अभिमानी जीवात्माको ब्रह्मका तीसरा पाद मान लेना उचित नहीं मालूम होता; क्योंकि इसके बाद अगले मन्त्रमें यह स्पष्ट कर दिया गया है कि इन तीनों अवस्थाओंमें स्थित तीन पादोंके नामसे जिनका वर्णन हुआ है, वे सर्वेश्वर, सर्वज्ञ, अन्तर्यामी, सम्पूर्ण जगत्के कारण और समस्त प्राणियोंकी उत्पत्ति तथा प्रलयके स्थान हैं। इसके सिवा ग्यारहवें मन्त्रमें ओंकारकी तीसरी मात्राके साथ तीसरे पादकी एकता करके उसे जाननेका फल सबको जानना और सम्पूर्ण जगत्को विलीन कर लेना बताया है; इसलिये भी '**प्राज्ञः**' पदका वाच्यार्थ कारण-जगत्के अधिष्ठाता परमेश्वरको ही समझना चाहिये। वह प्राज्ञ ही पूर्णब्रह्म परमात्माका तीसरा पाद है॥ ५॥

सम्बन्ध—*ऊपर बतलाये हुए ब्रह्मके पाद वैश्वानर, तैजस और प्राज्ञ किसके नाम हैं? इस जिज्ञासापर कहते हैं—*

एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येष योनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम्॥ ६॥

एषः=यह; **सर्वेश्वरः**=सबका ईश्वर है; **एषः**=यह; **सर्वज्ञः**=सर्वज्ञ है; **एषः**=यह; **अन्तर्यामी**=सबका अन्तर्यामी है; **एषः**=यह; **सर्वस्य**=सम्पूर्ण जगत्का; **योनिः**=कारण है; **हि**=क्योंकि; **भूतानाम्**=समस्त प्राणियोंका; **प्रभवाप्ययौ**=उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयका स्थान यही है॥ ६॥

व्याख्या—जिन परमेश्वरका तीनों पादोंके रूपमें वर्णन किया गया है, ये सम्पूर्ण ईश्वरोंके भी ईश्वर हैं। ये ही सर्वज्ञ और सबके अन्तर्यामी हैं। ये ही सम्पूर्ण जगत्के कारण हैं; क्योंकि सम्पूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके स्थान ये ही हैं। प्रश्नोपनिषद्में तीनों मात्राओंसे युक्त ओंकारके द्वारा परम पुरुष परमेश्वरका ध्यान करनेकी बात कहकर उसका फल समस्त पापोंसे रहित हो अविनाशी परात्पर पुरुषोत्तमको प्राप्त कर लेना बताया गया है (५।५)। अतः पूर्ववर्णित वैश्वानर, तैजस और प्राज्ञ परमेश्वरके ही नाम हैं। अलग-अलग स्थितिमें उन्हींका वर्णन भिन्न-भिन्न नामोंसे किया गया है॥ ६॥

सम्बन्ध—*अब पूर्णब्रह्म परमात्माके चौथे पादका वर्णन करते हैं—*

नान्तःप्रज्ञं न बहिष्प्रज्ञं नोभयतःप्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम्। अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः ॥ ७ ॥

न अन्तःप्रज्ञम्=जो न भीतरकी ओर प्रज्ञावाला है; **न बहिष्प्रज्ञम्**=न बाहरकी ओर प्रज्ञावाला है; **न उभयतःप्रज्ञम्**=न दोनों ओर प्रज्ञावाला है; **न प्रज्ञानघनम्**=न प्रज्ञानघन है; **न प्रज्ञम्**=न जाननेवाला है; **न अप्रज्ञम्**=न नहीं जाननेवाला है; **अदृष्टम्**=जो देखा नहीं गया हो; **अव्यवहार्यम्**=जो व्यवहारमें नहीं लाया जा सकता; **अग्राह्यम्**=जो पकड़नेमें नहीं आ सकता; **अलक्षणम्**=जिसका कोई लक्षण (चिह्न) नहीं है; **अचिन्त्यम्**=जो चिन्तन करनेमें नहीं आ सकता; **अव्यपदेश्यम्**=जो बतलानेमें नहीं आ सकता; **एकात्मप्रत्ययसारम्**=एकमात्र आत्मसत्ताकी प्रतीति ही जिसका सार (प्रमाण) है; **प्रपञ्चोपशमम्**=जिसमें प्रपञ्चका सर्वथा अभाव है, ऐसा; **शान्तम्**=सर्वथा शान्त; **शिवम्**=कल्याणमय; **अद्वैतम्**=अद्वितीय तत्त्व; **चतुर्थम्**=(परब्रह्म परमात्माका) चौथा पाद है; **मन्यन्ते**=(इस प्रकार ब्रह्मज्ञानी) मानते हैं; **सः आत्मा**=वह परमात्मा (है); **सः विज्ञेयः**=वह जाननेयोग्य (है)॥ ७॥

व्याख्या—इस मन्त्रमें निर्गुण-निराकार निर्विशेष स्वरूपको पूर्णब्रह्म परमात्माका चौथा पाद बताया गया है। भाव यह है कि जिसका ज्ञान न तो बाहरकी ओर है, न भीतरकी ओर है और न दोनों ही ओर है; जो न ज्ञानस्वरूप है, न जाननेवाला है और न नहीं जाननेवाला ही है; जो न देखनेमें आ सकता है, न व्यवहारमें लाया जा सकता है, न ग्रहण करनेमें आ सकता है, न चिन्तन करनेमें, न बतलानेमें आ सकता है और न जिसका कोई लक्षण ही है, जिसमें समस्त प्रपञ्चका अभाव है, एकमात्र परमात्मसत्ताकी प्रतीति ही जिसमें सार (प्रमाण) है—ऐसा सर्वथा शान्त, कल्याणमय, अद्वितीय तत्त्व पूर्णब्रह्मका चौथा पाद माना जाता है। इस प्रकार जिनका चार पादोंमें विभाग करके वर्णन किया गया, वे ही पूर्णब्रह्म परमात्मा हैं; उन्हींको जानना चाहिये।

इस मन्त्रमें '**चतुर्थम् मन्यन्ते**' पदके प्रयोगसे यह स्पष्ट हो जाता है कि यहाँ परब्रह्म परमात्माके चार पादोंकी कल्पना केवल उनका तत्त्व समझानेके लिये ही की गयी है। वास्तवमें अवयवरहित परमात्माके कोई भाग नहीं हैं। जो पूर्णब्रह्म परमात्मा स्थूल जगत्में परिपूर्ण हैं, वे ही सूक्ष्म और कारण-जगत्के अन्तर्यामी और अधिष्ठाता भी हैं तथा वे ही इन सबसे अलग निर्विशेष परमात्मा हैं। वे सर्वशक्तिमान् भी हैं और सब शक्तियोंसे रहित भी हैं। वे सगुण भी हैं और निर्गुण भी। वे साकार भी हैं और निराकार भी। वास्तवमें वे हमारी बुद्धि और तर्कसे सर्वथा अतीत हैं॥ ७॥

सम्बन्ध—*उक्त परब्रह्म परमात्माकी उनके वाचक प्रणवके साथ एकता करते हुए कहते हैं—*

सोऽयमात्माध्यक्षरमोङ्कारोऽधिमात्रं पादा मात्रा मात्राश्च पादा अकार उकारो मकार इति॥ ८ ॥

सः=वह (जिसको चार पादवाला बताया गया है); **अयम्**=यह; **आत्मा**=परमात्मा; **अध्यक्षरम्**=(उसके वाचक) प्रणवके अधिकारमें (प्रकरणमें) वर्णित होनेके कारण; **अधिमात्रम्**=तीन मात्राओंसे युक्त; **ओंकारः**=ओंकार है; **अकारः**='अ'; **उकारः**='उ' (और); **मकारः**='म'; **इति**=ये (तीनों); **मात्राः**=मात्राएँ ही; **पादाः**=(तीन) पाद हैं; **च**=और; **पादाः**=(उस ब्रह्मके तीन) पाद ही; **मात्राः**=(तीन) मात्राएँ हैं॥ ८॥

व्याख्या—वे परब्रह्म परमात्मा, जिनके चार पादोंका वर्णन किया गया है, यहाँ अक्षरके प्रकरणमें अपने नामसे अभिन्न होनेके कारण तीन मात्राओंवाला ओंकार है। 'अ', 'उ' और 'म'—ये तीनों मात्राएँ ही उनके उपर्युक्त तीन पाद हैं और उनके तीनों पाद ही ओंकारकी तीन मात्राएँ हैं। जिस प्रकार ओंकार अपनी मात्राओंसे अलग नहीं है, उसी प्रकार अपने पादोंसे परमात्मा अलग नहीं हैं। यहाँ पाद और मात्राकी एकता ओंकारके द्वारा परब्रह्म परमात्माकी उपासनाके लिये की गयी है—ऐसा मालूम होता है॥ ८॥

सम्बन्ध—*ओंकारकी किस मात्रासे ब्रह्मके किस पादकी एकता है और वह क्यों है? इस जिज्ञासापर तीन मात्राओंका रहस्य समझानेके लिये प्रथम पहले पाद और पहली मात्राकी एकताका प्रतिपादन करते हैं—*

जागरितस्थानो वैश्वानरोऽकारः प्रथमा मात्राऽऽप्तेरादिमत्त्वाद्वाऽऽप्नोति ह वै सर्वान्कामानादिश्च भवति य एवं वेद॥ ९॥

प्रथमा=(ओंकारकी) पहली; **मात्रा**=मात्रा; **अकारः**=अकार ही; **आप्तेः**=(समस्त जगत्के नामोंमें अर्थात् शब्दमात्रमें) व्याप्त होनेके कारण; **वा**=और; **आदिमत्त्वात्**=आदिवाला होनेके कारण; **जागरितस्थानः**=जाग्रत्की भाँति स्थूल जगत्रूप शरीरवाला; **वैश्वानरः**=वैश्वानर नामक पहला पाद है; **यः**=जो; **एवम्**=इस प्रकार; **वेद**=जानता है; [**सः**] **ह वै**=वह अवश्य ही; **सर्वान्**=सम्पूर्ण; **कामान्**=भोगोंको; **आप्नोति**=प्राप्त कर लेता है; **च**=और; **आदिः**=सबका आदि (प्रधान); **भवति**=बन जाता है॥ ९॥

व्याख्या—परब्रह्म परमात्माके नामात्मक ओंकारकी जो पहली मात्रा 'अ' है, यह समस्त जगत्के नामोंमें अर्थात् किसी भी अर्थको बतलानेवाले जितने भी शब्द हैं, उन सबमें व्याप्त है। स्वर अथवा व्यञ्जन—कोई भी वर्ण अकारसे रहित नहीं है। श्रुति भी कहती है—'**अकारो वै सर्वा वाक्**' (ऐतरेय आरण्यक० २।३।६)। गीतामें भी भगवान्ने कहा है कि अक्षरोंमें (वर्णोंमें) मैं 'अ' हूँ (१०।३३) तथा समस्त वर्णोंमें 'अ' ही पहला वर्ण है। इसी प्रकार इस स्थूल जगत्रूप विराट्-शरीरमें वे वैश्वानररूप अन्तर्यामी परमेश्वर व्याप्त हैं और विराट्-रूपसे सबके पहले स्वयं प्रकट होनेके कारण इस जगत्के आदि भी वे ही हैं। इस प्रकार 'अ' की और जाग्रत्की भाँति प्रत्यक्ष दिखायी देनेवाले इस स्थूल जगत्रूप शरीरमें व्याप्त वैश्वानर नामक प्रथम पादकी एकता होनेके कारण 'अ' ही पूर्णब्रह्म परमेश्वरका पहला पाद है। जो मनुष्य इस प्रकार अकार और विराट्-शरीरके आत्मा परमेश्वरकी एकताको जानता है और उनकी उपासना करता है, वह सम्पूर्ण कामनाओंको अर्थात् इच्छित पदार्थोंको पा लेता है और जगत्में प्रधान—सर्वमान्य हो जाता है॥ ९॥

सम्बन्ध—*अब दूसरे पादकी और दूसरी मात्राकी एकताका प्रतिपादन करते हैं—*

स्वप्नस्थानस्तैजस उकारो द्वितीया मात्रोत्कर्षादुभयत्वाद्वोत्कर्षति ह वै ज्ञानसन्ततिं समानश्च भवति नास्याब्रह्मवित्कुले भवति य एवं वेद॥ १०॥

द्वितीया=(ओंकारकी) दूसरी; **मात्रा**=मात्रा; **उकारः**='उ'; **उत्कर्षात्**=('अ' से) उत्कृष्ट होनेके कारण; **वा**=और; **उभयत्वात्**=दोनों भाववाला होनेके कारण; **स्वप्नस्थानः**=स्वप्नकी भाँति सूक्ष्म जगत्रूप शरीरवाला; **तैजसः**=तैजस नामक (दूसरा पाद) है; **यः**=जो; **एवम्**=इस प्रकार; **वेद**=जानता है; [**सः**] **ह वै**=वह अवश्य ही; **ज्ञानसन्ततिम्**=ज्ञानकी परम्पराको; **उत्कर्षति**=उन्नत करता है; **च**=और; **समानः**=समान भाववाला; **भवति**=हो जाता है; **अस्य**=इसके; **कुले**=कुलमें; **अब्रह्मवित्**=वेदरूप ब्रह्मको न जाननेवाला; **न**=नहीं; **भवति**=होता॥ १०॥

व्याख्या—परब्रह्म परमात्माके नामात्मक ओंकारकी दूसरी मात्रा जो 'उ' है, यह 'अ' से उत्कृष्ट (ऊपर उठा हुआ) होनेके कारण श्रेष्ठ है तथा 'अ' और 'म' इन दोनोंके बीचमें होनेके कारण उन दोनोंके साथ इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है; अतः यह उभयस्वरूप है। इसी प्रकार वैश्वानरसे तैजस (हिरण्यगर्भ) उत्कृष्ट है तथा वैश्वानर और प्राज्ञके मध्यगत होनेसे वह उभयसम्बन्धी भी है। इस समानताके कारण ही 'उ' को 'तैजस' नामक द्वितीय पाद कहा गया है। भाव यह है कि इस स्थूल जगत्के प्राकट्यसे पहले परमेश्वरके आदि संकल्पद्वारा जो सूक्ष्म सृष्टि उत्पन्न होती है, जिसका वर्णन मानस-सृष्टिके नामसे आता है, जिसमें समस्त तत्त्व तन्मात्राओंके रूपमें रहते हैं, स्थूलरूपमें परिणत नहीं होते, उस सूक्ष्म जगत्रूप शरीरमें चेतन प्रकाशस्वरूप हिरण्यगर्भ परमेश्वर इसके अधिष्ठाता होकर रहते हैं तथा कारण-जगत् और स्थूल-जगत्—इन दोनोंसे ही सूक्ष्म जगत्का घनिष्ठ सम्बन्ध है, इसलिये वे कारण और स्थूल दोनों रूपवाले हैं। इस तरह 'उ' की और मानसिक सृष्टिके अधिष्ठाता

तैजसरूप दूसरे पादकी समानता होनेके कारण 'उ' ही पूर्णब्रह्म परमात्माका दूसरा पाद है। जो मनुष्य इस प्रकार 'उ' और तेजोमय हिरण्यगर्भ-स्वरूपकी एकताके रहस्यको समझ लेता है, वह स्वयं इस जगत्के सूक्ष्म तत्त्वोंको भलीभाँति प्रत्यक्ष कर लेता है, इस कारण इस ज्ञानकी परम्पराको उन्नत करता है—उसे बढ़ाता है तथा सर्वत्र समभाववाला हो जाता है; क्योंकि जगत्के सूक्ष्म तत्त्वोंको समझ लेनेके कारण उसका वास्तविक रहस्य समझमें आ जानेसे उसकी विषमताका नाश हो जाता है। इसलिये उससे उत्पन्न हुई संतान भी कोई ऐसी नहीं होती, जिसको हिरण्यगर्भरूप परमेश्वरके उपर्युक्त रहस्यका ज्ञान न हो जाय॥ १०॥

सुषुप्तस्थानः प्राज्ञो मकारस्तृतीया मात्रा मितेरपीतेर्वा मिनोति ह वा इदं सर्वमपीतिश्च भवति य एवं वेद॥ ११॥

तृतीया=(ओंकारकी) तीसरी; **मात्रा**=मात्रा; **मकारः**='म' ही; **मितेः**=माप करनेवाला (जाननेवाला) होनेके कारण; **वा**=और; **अपीतेः**=विलीन करनेवाला होनेसे; **सुषुप्तस्थानः**=सुषुप्तिकी भाँति कारणमें विलीन जगत् ही जिसका शरीर है; **प्राज्ञः**=प्राज्ञ नामक तीसरा पाद है; **यः**=जो; **एवम्**=इस प्रकार; **वेद**=जानता है; **[सः] ह वै**=वह अवश्य ही; **इदम्**=इस; **सर्वम्**=सम्पूर्ण कारण-जगत्को; **मिनोति**=माप लेता है अर्थात् भलीभाँति जान लेता है; **च**=और; **अपीतिः**=सबको अपनेमें विलीन करनेवाला; **भवति**=हो जाता है॥ ११॥

व्याख्या—परमात्माके नामात्मक ओंकारकी जो तीसरी मात्रा 'म' है, यह '**मा**' धातुसे बना है। '**मा**' धातुका अर्थ माप लेना यानी अमुक वस्तु इतनी है, यह समझ लेना है। यह 'म' ओंकारकी अन्तिम मात्रा है; 'अ' और 'उ' के पीछे उच्चरित होती है—इस कारण दोनोंका माप इसमें आ जाता है; अतः यह उनको जाननेवाला है तथा 'म' का उच्चारण होते-होते मुख बंद हो जाता है, 'अ' और 'उ' दोनों उसमें विलीन हो जाते हैं; अतः वह उन दोनों मात्राओंको अन्तमें विलीन करनेवाला भी है। इसी प्रकार सुषुप्तस्थानीय कारण-जगत्का अधिष्ठाता प्राज्ञ भी सर्वज्ञ है। स्थूल, सूक्ष्म और कारण—इन तीनों अवस्थाओंमें स्थित जगत्को जाननेवाला है। कारण-जगत्से ही सूक्ष्म और स्थूल-जगत्की उत्पत्ति होती है और उसीमें उनका लय भी होता है। इस प्रकार 'म' की और कारण-जगत्के अधिष्ठाता प्राज्ञ नामक तीसरे पादकी समता होनेके कारण 'म' रूप तीसरी मात्रा ही पूर्ण ब्रह्मका तीसरा पाद है। जो मनुष्य इस प्रकार 'म' और 'प्राज्ञ' स्वरूप परमेश्वरकी एकताको जानता है—इस रहस्यको समझकर ओंकारके स्मरणद्वारा परमेश्वरका चिन्तन करता है, वह इस मूलसहित सम्पूर्ण जगत्को भली प्रकार जान लेता है और सबको विलीन करनेवाला हो जाता है, अर्थात् उसकी बाह्य दृष्टि निवृत्त हो जाती है। अतः वह सर्वत्र एक परब्रह्म परमेश्वरको ही देखनेवाला बन जाता है॥ ११॥

सम्बन्ध—*मात्रारहित ओंकारकी चौथे पादके साथ एकताका प्रतिपादन करते हुए इस उपनिषद्का उपसंहार करते हैं—*

अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैत एवमोङ्कार आत्मैव संविशत्यात्मनाऽऽत्मानं य एवं वेद य एवं वेद॥ १२॥

एवम्=इस प्रकार; **अमात्रः**=मात्रारहित; **ओंकारः**=प्रणव ही; **अव्यवहार्यः**=व्यवहारमें न आनेवाला; **प्रपञ्चोपशमः**=प्रपञ्चसे अतीत; **शिवः**=कल्याणमय; **अद्वैतः**=अद्वितीय; **चतुर्थः**=पूर्ण ब्रह्मका चौथा पाद है; **[सः] आत्मा**=वह आत्मा; **एव**=अवश्य ही; **आत्मना**=आत्माके द्वारा; **आत्मानम्**=परात्पर ब्रह्म परमात्मामें; **संविशति**=पूर्णतया प्रविष्ट हो जाता है; **यः**=जो; **एवम्**=इस प्रकार; **वेद**=जानता है; **यः एवं वेद**=जो इस प्रकार जानता है॥ १२॥

व्याख्या—परब्रह्म परमात्माके नामात्मक ओंकारका जो मात्रारहित, बोलनेमें न आनेवाला, निराकार स्वरूप है, वही मन-वाणीका अविषय होनेसे व्यवहारमें न लाया जा सकनेवाला, प्रपञ्चसे अतीत, कल्याणमय, अद्वितीय—निर्गुण-निराकाररूप चौथा पाद है। भाव यह है कि जिस प्रकार तीन मात्राओंकी पहले बताये हुए तीन पादोंके साथ समता है, उसी प्रकार ओंकारके निराकार स्वरूपकी परब्रह्म परमात्माके

निर्गुण-निराकार निर्विशेषरूप चौथे पादके साथ समता है। जो मनुष्य इस प्रकार ओंकार और परब्रह्म परमात्माकी अर्थात् नाम और नामीकी एकताके रहस्यको समझकर परब्रह्म परमात्माको पानेके लिये उनके नाम-जपका अवलम्ब लेकर तत्परतासे साधन करता है, वह निस्सन्देह आत्मासे आत्मामें अर्थात् परात्पर परब्रह्म परमात्मामें प्रविष्ट हो जाता है। 'जो इस प्रकार जानता है' इस वाक्यको दो बार कहकर उपनिषद्की समाप्ति सूचित की गयी है।

परब्रह्म परमात्मा और उनके नामकी महिमा अपार है, उसका कोई पार नहीं पा सकता। इस प्रकरणमें उन असीम पूर्ण ब्रह्म परमात्माके चार पादोंकी कल्पना उनके स्थूल, सूक्ष्म और कारण—इन तीनों सगुणरूपोंकी और निर्गुण-निराकारस्वरूपकी एकता दिखानेके लिये तथा नाम और नामीकी सब प्रकारसे एकता दिखानेके लिये एवं उनकी सर्वभवन-सामर्थ्यरूप जो अचिन्त्य शक्ति है, वह उनसे सर्वथा अभिन्न है—यह भाव दिखानेके लिये की गयी है, ऐसा अनुमान होता है॥ १२॥

॥ अथर्ववेदीय माण्डूक्योपनिषद् समाप्त॥

शान्तिपाठ

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः॥
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

[इसका अर्थ प्रश्नोपनिषद्में दिया जा चुका है।]

त्वमेव सर्वम्

(रचयिता—श्रीभगवतीप्रसादजी त्रिपाठी, विशारद, काव्यतीर्थ, एम्०ए०, एल्-एल्०बी०)

यात्रा तुम्हीं भवसागर केवट पोत तुम्हीं पतवार तुम्हीं हो।
दर्शक दृश्य तुम्हीं नटनागर नायक नाटककार तुम्हीं हो॥
व्यष्टि समष्टि अहंकृति हो मन बुद्धि तुम्हीं हो, विचार तुम्हीं हो।
जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति तुरीय अकार उकार मकार तुम्हीं हो॥ १॥
विष्णु पुकारते कोई तुम्हें शिव कोई हैं शक्ति महा बतलाते।
ईश्वर कोई परंरस कारण ब्रह्म हैं कोई तुम्हें ठहराते॥
शंकर एक ही राम कभी घनश्याम स्वरूप तुम्हीं बन जाते।
बुद्बुद वीचि प्रवाह यथा जल एक अनेक स्वरूपमें पाते॥ २॥